Indian Streams Research Journal
ISSN 2230-7850
Volume-4 | Issue-10 | Nov-2014 Available online at www.isrj.org

# वर्तमान सामाजिक परिवेश पर एक दृष्टिक्षेप

**संजयकुमार शर्मा**

हिन्दी विभाग, कला, वाणिज्य, विज्ञा-न महाविद्यालय , तलोदा जि. नंदुरबार.

***सारांश*** — भारतीय समाज और हमारा सामाजिक संगठन विश्वभर के लिए हमेशा 'आदर्श' का रहा है, पर आज हमारा समाज विखर रहा है, टूट रहा है। हम भयानक सामाजिक विषमता के शिकार हुए है। सामाजिक प्रतिबध्दता की भावना नष्ट हो रही है। समाज के मूल्यों में विखराव उत्पन्न हो रहा है। समाज में संगठन की शक्ती क्षीण होती जा रही है। व्दितीय युध्दोपरांत पूँजीवाद देशों में भ्रष्टाचार, घूस, अन्याय का बोलबाल हो गया। सत्य, अहिंसा, विश्वास, न्याय, प्रेम आदि मानवीय मूल्य विलुप्त हो गए। भारत के युवा वर्ग पर इसका प्रभाव पडा। यहाँ के मानवीय मूल्य भी एक प्रकार से विघटित होने लगे। व्यक्ति के मन में अविश्वास, आशंका, भय आदि घर करने लगे। वर्तमान काल का व्यक्ति स्वार्थी, लोलुप और हिंसक बन गया है। उसमं आत्मीयता दिखाई नही देती।

## *प्रस्तावना :-*

व्यक्ति अपन धंदे में, धन में, वैभव में लिप्त हो चुका है। वह भाईचारे की भावना को भूल गया है। आवश्यकता ने व्यक्ति को निरीह, अपंग और असहाय बना दिया है। वह सच्चाई के व्दार खटखटाने में हिचकिचाता है। वह निर्व्दन्व्द रुप से असत्य के कठोर प्रहार को सहता रहता है। आज भूख ने व्यक्ति को जानवर बना दिया है। जिसके कारण उसका मुंह बंद हो गया है। 'समता' उसी समाज में होती है जो स्वतंत्र हो और समाज वही स्वतंत्र होता है जिसका अंग 'व्यक्ति' स्वतंत्र हो। भारत को स्वतंत्रता तो मिली परंतु सामाजिक रुढियॉ, विश्वासों और मान्यताओं ने उसे जकडकर ही रखा, उसे इनसे मुक्त नही होने दिया।

इन बंद कमरों में मेरी सांस घुटी जाती है,

Indian Streams Research Journal
ISSN 2230-7850
Volume-4 | Issue-10 | Nov-2014 Available online at www.isrj.org

खिडकियाँ खोलता हूँ तो जहरीली हवा आती है।

किसी शायर की ये दो पंक्तियाँ आज की मनोदशा को पूरी तरह उजागर करती है। वर्तमान काल में मनुष्य की चेतना को झ□झोरने वाले, मानव मूल्यों को विघटित करने वाले अनेक तत्वों ने जन्म लिया है, बेकारी, महंगाई, अकाल, बाढ, सांप्रदायिकता, जातिवाद, नेताई-कुर्सी का मोह आदि प्रमुख है। आज जीवन में अराजकता व 'शून्यता' के 'रक्तबीज' फूल-फल रहे है। जीवन विसंगतियों से भरपूर है। व्यक्ति अपने अस्तित्व की खोज के लिए कुलबुला रहा है, हडबडा रहा है अब 'आस्था' के बीज बोए नही जाते कि हम विश्वास की 'फसल' काट सके। नतीजतन आज ऐसा माहौल है कि हम अपने ही स्वार्थ में रच बोलने को राजी नही। पुराने मूल्यों को अस्वीकार कर नए मूल्यों को अपना रहा है, पर असामाजिक तत्वों के कारण पारिवेशिक घुटन □ी झेलता हुआ जी रहा है। कॉलेजों के मैदानों में विद्रोह और असंतोष है। राजनीति में छल-कपट, झूठ का प्रपंच है। महंगाई आर्थिक धरातल पर खून पी रही है। इसीलिए सामाजिक मूल्यों को आज व्यक्ति नकारता जा रहा है। आज अन्याय असुरक्षा एवं असमानता की चक्की में पिसता हुआ मानव जड हो रहा है। चारों तरफ 'अधियारा' व 'विपत्तियॉं' छाई हुई है। विश्वासों का हनन हो रहा है। मानवता की हत्या हो रही है। मशीनी यु□ में म-नुष्य □ा महत्व भी 'पुर्जे के समान' होते जा रहा है। आज का मनुष्य जीवन के खोखलेपन के कारण निरीह और 'लाचार' बना हुआ है।

जनसंख्या के मामलें में दुनिया में दूसरे क्रम प्रर होने कारण हम अभी गरीब है और अन्य छोटे देशों से पिछडे हुए है। जब हम सब अपनी समस्याओं और स्वार्थ के जंजाल से ही मुक्त नही हो पा रहे है तो 'राष्ट्रहित' की क्या सोचेंगे? यही कारण है कि आजादी मिलने के इतने बरसों बाद भी हम आत्मनिर्भरता प्राप्त नही कर सके है। देश प्रेम के उस जज्बे पर बीते सालों में स्वार्थ की मोटी परत चढ चुकी है जिसे हटाए बगैर मुल□ □ा भला संभव नही है। यह कार्य कठिन जरुर है किंतु असंभव नही है। हमारे सामने आज की सबसे बडी चुनौती भी यही है। स्वार्थ से उपजी रिश्वतखोरी, मुनाफाखोरी और भाई-भतीजावाद जैसे बुराइयों ने 'सोने की चिडिया' जैसे देश □ी □ाले कौवे से बदतर स्थिति में पहुँचा दिया है। 'हम' की पवित्र भावना पीछे छुट गई है और 'मैं' का स्वार्थ

जनमानस पर हावी हो गया है। होना यह चाहिए था कि 'हम' हाथ की पाँचों उंगलियों की तरह रहते जो रहती तो अलग-अलग है लेकिन जब एक होकर प्रहार करती है, तो अपनी 'ताकद का एहसास करा ही देती है। लेकिन हमारे यहाँ तो बात बिल्कुल उल्टी है सब अपने-अपने में मस्त है। बात चाहे राजनेताओं की हो या सामाजिक नेताओं की सबको चिंता अपनी ही रहती है।

यह हम सभी अच्छी तरह जानते है किसी भी रोग का निदान तब तक संभव नही है जब तक हम उसके कारणों की खोज न कर ले, क्योंकि कारण ही तो वह जड है जिस पर हमें प्रहार करना है। यही बात समाज, प्रदेश और देश पर लागू है और ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई है कि हमें चिंतन करने को मजबूर होना पड रहा है। यदि यह उन कारणों को खोज पाए तो बुराईयों को दूर करना कठिन नही होगा। विचार करने पर सबसे पहले हमें अपने आसपास के वातावरण पर निगाह डालनी होगी। मन को टटोलना होगा और सोच के दायरे □ो व्यापक बनाना होगा। इस दिशा में विचार करने पर मानवीय प्रवृत्ति में आए व्यापक बदलाव का दृश्य हमारे सामने आता है। कभी पडोसी की 'मदद' करने को तत्पर रहने वाला व्यक्ति आज उसके 'मुसीबत' में पडने पर घर के दरवाजे बंद करने लगा है। छोटे से 'लाभ' के लिए हम किसी को बडी 'उलझन' में डालने से नही चूकते। गलत काम होते देख आँखे मूँद लेना हमारी 'आदम' बन चुकी है। अपने हित साधने के लिए कुछ भी कर गुजरना हमारे लिए मुश्किल नहीं रहा है। समाज हित और देश हित हमारे लिए प्राथमिकता नही रहे।

आज नगरों की संख्या बढ रही है। ४० प्रतिशत भारतीय शहरी क्षेत्रों में रहते है। यह प्रतिशत दिनों-दिन बढता जा रहा है। जनसंख्या का 'चक्र' रुकने का नाम नही ले रहा है बल्कि उसकी गति 'बढ' रही है। जिस तेजी से जनसंख्या बढ रही है उतनी तेजी से शिक्षा, भोजन, आवास, यातायात, परिवहन, सफाई, प्रशासन आदि की व्यवस्था में वृध्दि नही हुई तथा अन्य साधारण सुविधाएँ भी नही दी जा रही है। महानगरों की हालत तो और भी शोचनीय है। और उनके अनुरुप समुचित शिक्षा-पध्दिति और समाज-व्यवस्था □ा वि□ास शि□ा-शास्त्रियों और समाज-शास्त्रियों के लिए ' चुनौती' बन गया है। नगरों के भीतर 'उपनगर' और उनमें दुनिया भर □ी '□ंद□ी' और सडांध में लिपटा मानव-जीवन नरकीय दृश्य उपस्थित करता है। इन सब बातों के कारण अनेक परम्परागत आचार संहिताएँ बदल रही है नैतिक मानदंड बदल रहे है, और लोगों की जीवनचर्या बदल रही है।

नगरों की स्वच्छता और निर्मल वातावरण की समस्या विकराल रुप धारण करती जा रही है। अमरीका में 'वृध्दावस्था' की समस्या है, जबकि भारत में 'युवावस्था' की समस्या है। इस समस्या को हल नही किया जा रहा है। हमारे देश का कल का भविष्य 'युवा' है परंतु यही भविष्य समस्याओं के 'बवंडर' में ऐसा फँसा है ि□ भविष्य को वह देख पाएगा या नहीं यह शंका निर्माण हो रही है। वैज्ञानि□-औद्योगिक तकनीकी विकास ने जहाँ एक ओर जीवन की सुख-सुविधायें प्रस्तुत की है वही दूसरी ओर परम्परागत जीवन-मूल्यों पर प्रश्न-चिन्ह भी लगा दिया है। इसलिए आज का नवयुवक विद्रोह करता हुआ दिखाई दे रहा है। वह अपने ढंग से सभी प्रकार की पुरानी मान्यताओं को तोडना चाहता है सडी-गली परंपराओं के बोझ से वह समाज को उबारना चाहता है, उसमें शक्ति है, उत्साह है, वह कुछ बनाना, बिगाडना चाहता है। इस शक्ति को 'प्रज्वलित' करने के लिए संतो के वाणी रुपी 'तेल' की आज आवश्यकता है। डॉ. विजयचंद्र के शब्दों में 'आज हमारी अनेक समस्याएँ है। आधुनिक यंत्र-प्रधान संस्कृति ने हमें स्वयं यंत्र-पुर्जे में परिवर्तित कर दिया है। लाभ लोभवादी आज के सामाज ने सम्बन्धों में अलगाव स्थापित किया है। हम भीतर टूटे है और 'एकाकी' है। बाहर से भी हम पूरी तरह बिखर चुके है। 'फ्रि इकानांमी' से ले□र 'फ्रि-सेक्स' तक की आयातीत विचारधाराओं ने हमें शारीरिक रुप में 'गुलाम' और मानसिक रुप से 'विकारग्रस्त' कर दिया है। इस 'बीहड' से बाहर निकलने का एक ही मार्ग है - हमारी संस्कृति के तत्वों □ा पुनराख्यान। (कल्याण जीवन ज्योति - डॉ.विजयचंद्र पृ. ८ )

परंपरागत सुरक्षित, भारतीय समाज व्यवस्था को पश्चिमी समाज के अंधानुकरण कारण उपजी हुई नई सामाजिकता, विकटता ने इस व्यवस्था को 'ढूलमूल' बना दिया है। हमारे देश की 'संयुक्त परिवार' की संकल्पना को पश्चिमी अंधानुकरण ने 'सुरंग' लगाकर 'विभक्त परिवार' को जन्म दिया है, जिसमें न किसी रिश्ते में अपनापन है, न सुख-दु□ा में साहस, मनोबल बनाए रखने वाले कोई रिश्तेदार है। संयुक्त परिवार में एक दूसरे की सहायता, बच्चों पर सामूहिक रुप से संस्कार, अपनत्व, अपनापन, बहुवैचारिकता, बहु-बेटियों का स्नेह, रिश्तेदारी में प्रगाढता मान, सम्मान, आदरभाव आदि होते थे, आज इनका अभाव दिखाई दे रहा है। पश्चिमी सभ्यता के कारण समाज का ढाँचा टूट गया है, समाज विखंडित होकर बिखर गया है। समाज में से 'सामाजिक प्रतबध्दता' की भावना गायब हो गई है। विभक्त परिवार या पश्चिमी सभ्यता के व्यक्ति स्वातंत्र्य का लाभ हुआ

है पर यह 'एक' लाभ अपने साथ 'अनेक' दोषों को लेकर आया जो 'लाभ' होते हुए भी हमें हानि पहुँचा रहा है। 'स्नेह' कम होता जा रहा है और 'चिताएँ' बढ रही है। समाज का विभाजन होकर टुकडों में बटं गया है। आमदनी घट रही है। गाँवो के लो शहरों की ओर पलायन कर रहे है। शहरी सभ्यता के कारण अपने-अपने में सिमट रहे है। छोटे-परिवार की संकल्पना आने से 'विचार', 'प्रवृत्ति' और 'कृति' और 'संस्कृति' भी 'छोटी' बनती जा रही है। सामाजिक सुख जाता रहा है और 'टेंशन' बढता जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में बोर्डिंग स्कूल 'संस्कृति' का बोलबाजा होता जा रहा है जिससे परिवार का सदस्य परिवार से दूर रहने लगा है, जिससे 'अपनत्व' नष्ट हो गया है। 'कॉनवेट' संस्कृति की आँधी ने तो हमारी संस्कृति का 'ढाँचा' ही तोड दिया है। परिवार में छोटे-बच्चे और बुढे का स्थान 'अखरने' लगा है। परिणाम स्वरुप 'पालना-घर' और 'वृध्दाश्रम' की संख्या में इजाफा होता जा रहा है। 'नैतिकता' की कौन कहें? चिराग लेकर ढूँढने से भी शायद नहीं मिल पायेगी! 'स्त्री स्वातंत्र्य' के नाम पर 'स्वायत्त' का जोर बढ रहा है और स्त्री के शरीर का 'प्रदर्शन' विज्ञापन, फिल्म, संचार, टेलीविजन में 'खुलेआम' किया जा रहा है, कमाल की बात तो यह है कि 'स्त्री-मुक्ति' की बात करनेवाली स्त्री ही 'मुक्त' रुप से ये सब कर रही है। समाज के 'मूल्यो' और मानदण्डों का 'हनन' हो रहा है। समाज विनाश के 'भँवर' में फँसता जा रहा है, वह निवाश के कगार पर खडा है। ऐसे विनाश को रोकना जरुरी है। इसे टोकने की 'शक्ती' संतो के वचनों और विचारों में है इसलिए शायद संतों की अपने समय में जितनी आवश्यकता नही थी उससे ज्यादा आज आवश्यकता है।

सामाजिक जीवन में धर्म, जाति, भाषा, प्रदेश, वेशभूषा, खानपान के स्तर पर भेदभाव कायम है। अलगाव 'बढता जा रहा है, रिश्तों में 'दरारें', निर्माण हो रही है। उच्च वर्ग, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग, शहरी और ग्रामीण का अँतर बढ रहा है। देश में एकता, प्रेम, सहयोग, भाईचारा, करुणा, दया आदि सामाजिक मूल्यों का 'विघटन' तेजी से हो रहा है और समाज विघटित होता जा रहा है। सांप्रदायिक दंगे, भाषिक आंदोलन, प्रान्तीयता और क्षेत्रीयता विष की तरह समाज में व्याप्त हो गई है। इस तरह 'मोहभंग' और 'स्वप्रभंग' की प्रक्रिया सतत जारी है। देश में 'समाजवाद' एक नारा बनकर रह गया है। आर्थिक समता का स्वप्र 'स्वप्रवत' ही रहा। कानून

और व्यवस्था की स्थिति निराशाजनक हो गई है। समाज का अपना कोई चरित्र न रहा, राष्ट्रीय जीवन में संस्कृति सभ्यता और चरित्र की संकल्पना लुप्त हो गई।

**संजयकुमार शर्मा**
हिन्दी विभाग, कला, वाणिज्य, विज्ञान महाविद्यालय , तलोदा जि. नंदुरबार.